काव्यप्रकाश के अनूठे टीकाकार : आचार्य माणिक्यचन्द्रसूरि ।

पारुल मांकड

ईसा की बारहवीं-तेरहवीं शती में गुजरात में जो जैन-गूर्जर ग्रन्थकार हुए हैं, उनमें आचार्य माणिक्यचन्द्रसूरि अपनी मिसाल आप हैं। वे सुप्रसिद्ध मंत्रीश्वर वस्तुपाल के काल में विद्यमान थे। श्री र० छो० परीख के मतानुसार उनका समय ई० स० ११६० है[1]। संभवतः वे वस्तुपाल के वृद्ध समकालिक थे। आचार्य माणिक्यचन्द्र और वस्तुपाल के बारे में एक अनुश्रुति भी प्रसिद्ध है[2]। एक बार माणिक्यचन्द्र वटकूप ग्राम में स्थिरता कर रहे थे तब उनको वस्तुपाल ने निमंत्रित किया, किन्तु वे नहीं आये। फिर दोनों के बीच परस्पर कटाक्षयुक्त श्लोकों से व्यवहार हुआ। एक दिन वस्तुपाल ने माणिक्यचन्द्र की पौषधशाला की वस्तुएं चुरवा कर अन्य स्थल पर रखवा दीं। यह जानकर आचार्य मंत्री के पास आये और कहा कि स्तम्भरूप वस्तुपाल के रहते हुए भी यह उपद्रव कैसे हो गया? मंत्री ने कहा "पूज्यश्री का आगमन नहीं होता था इसलिए!" फिर वस्तुपाल ने सभी चीजें वापिस कर दीं और अपने ग्रन्थभण्डार से भी सब शास्त्रों की एक एक प्रति माणिक्यचन्द्रसूरि को अर्पण की[3]।

आचार्य माणिक्यचन्द्र राजगच्छीय सागरचन्द्र के शिष्य थे[4]। संस्कृत काव्यशास्त्र के **काव्यप्रकाश** जैसे अनमोल ग्रन्थरत्न पर **संकेत** नामक टीका के कर्त्ता के रूप में उनका नाम सदैव स्मरणीय रहेगा। **संकेत** के अतिरिक्त उन्होंने दो महाकाव्य — **शान्तिनाथचरित** और **पार्श्वनाथचरित** — भी रचें हैं[5]। प्रस्तुत आलेख में हम आचार्य माणिक्यचन्द्रसूरि के महनीय योगदान को **संकेत** टीका की पश्चाद्‌भू में रेखांकित करेंगे; साथ ही सुसज्ज टीकाकार के रूप में उनका यथोचित संक्षिप्त मूल्यांकन भी प्रस्तुत करेंगे।

"शारदादेश" के रूप में सुविश्रुत काश्मीर की भूमि में पनपा हुआ आचार्य मम्मट (ईस्वी ११-१२वीं शती) का आकर ग्रन्थ **काव्यप्रकाश (का० प्र०)** केवल ५०-६० वर्षों के अन्तराल में ही गूर्जर-धरा के विद्वानों, काव्यशास्त्रियों और सहृदयों के समादर का भाजन बन चुका था। यातायात के विशेष साधनों के अभाव में भी एक ग्रन्थ का दूसरे स्थानों में प्रचार-प्रसार हो सकता था यह बात उल्लेखनीय है। **काव्यप्रकाश** की महत्ता तो स्वयं सिद्ध ही है, परंतु आचार्य हेमचन्द्र और सिद्धराज जयसिंह के संयुक्त प्रयासों से देवी सरस्वती की ऐसी समर्चना सफल हो सकी। कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ने संभवतः **काव्यप्रकाश** पर टीका रची थी, किन्तु अद्यावधि वह अनुपलब्ध ही रही है, इसलिए आचार्य माणिक्यचन्द्र ही **का० प्र०** के प्रथम जैन-गूर्जर टीकाकार हैं। माणिक्यचन्द्र के पहले काश्मीर में ही **का० प्र०** के उपर दो टीकाएं रचीं गई। आचार्य मम्मट के युवासमकालिक राजानक रुय्यक का **संकेत** (ईसा की १२वीं शती का पूर्वार्ध) उपलब्ध सामग्री के उपलक्ष्य में **का० प्र०** का सर्व प्रथम टीकाग्रन्थ है। उनके तुरन्त बाद काश्मीर के ही भट्ट सोमेश्वर[6] ने **का० प्र०** की **काव्यादर्श-काव्यप्रकाश-संकेत** नामक टीका रची है। परंपरा में यह टीकाग्रन्थ-**संकेत**-इन्हीं अल्पाक्षरों से प्रसिद्ध है। सोमेश्वर के थोडे ही समय बाद आचार्य माणिक्यचन्द्र के संकेत का कालनिर्धारण हुआ है[7]। यह एक अनोखा योगानुयोग है कि प्रथम सभी तीन टीका ग्रन्थों के नाम **संकेत** हैं। इन तीन **संकेत** टीका ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त रोचक विषय है। आवश्यकतानुसार क्वचित् माणिक्यचन्द्र के **संकेत** के साथ रुय्यक और सोमेश्वर के योगदान का भी यहां उल्लेख किया जायेगा।

आचार्य माणिक्यचन्द्र का ग्रन्थ-सौष्ठव अद्‌भुत है। वे रुय्यक और सोमेश्वर का अनुसरण तो करतें हैं, फिर भी उनका बहुत कुछ मौलिक प्रदान भी है। **का० प्र०** के पाठसुधार का प्रशस्य कार्य उन्होंने किया है। इतना ही नहीं मम्मट की क्लिष्ट वाक्यसंरचना भी सुग्रथित कर दी है। पूर्वाचार्यों के ग्रन्थ का मनन और चिन्तन भी इन्होंने खुले मन से किया है। रुय्यक के **संकेत** की शैली कहीं कहीं क्लिष्ट बन जाती है, तो सोमेश्वर की अभिव्यक्ति कभी धूमिल-सी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रह जाती है। जब कि आचार्य माणिक्यचन्द्र की पदसंघटना और अभिव्यक्ति प्रसन्नगम्भीरा और निर्मलप्रवाहा है। एक सुसज्ज टीकाकार की सभी विशेषताएं उनमें भरी/पूरी हैं।

का० प्र० की टीका के आरंभ में ही माणिक्यचन्द्र ने **का० प्र०** की महत्ता सिद्ध करते हुए इस ग्रन्थराज को 'सर्वालङ्कृतिफालभूषणमणि'की विशेषणमाला अर्पित की है[८]। **संकेत** की रचना को उन्होंने साहसपूर्ण बताया है। आरम्भिक पद्यों में उन्होंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया है कि यश, प्रीति, इत्यादि के लिए उन्होंने संकेत का विरचन नहीं किया है, परंतु तीन निमित्त हैं, जिन से उनको **संकेत**रचना की प्रेरणा मिली। (१) स्वानुस्मरण के लिये, (२) जडों पर उपकार हेतु, (३) चेतोविनोद-स्वान्तः सुखाय[९] (**का० प्र० संकेत०** १, पृ० ६)।

का० प्र० के **संकेत** को उन्होंने एक कन्था की उपमा दी है। जिस में अनेकानेक ग्रन्थों का चयन है। श्री वेंकटनाथाचार्य के शब्दों में यह तो ज्ञानप्राप्त्यर्थ उनका भिक्षाटन है[१०]। इसलिए उनकी यह कन्था कोई साधारण भिक्षुक की तरह फटी-चीरी नहीं है, किन्तु राजयोगी की रेशमी कन्था की तरह उसकी बुनाइ निराली है। तानेबाने इतने सुग्रथित है कि, पृष्ठ पृष्ठ पर अनेक ग्रन्थ-ग्रन्थाकार और पूर्वप्राप्त परंपरा की दुर्लभ सामग्री प्रकटित होती है। करीबन ३२ ग्रन्थकार और ११ ग्रन्थों का निर्देश **संकेत** में हुआ है। "मम्मट का हृदय वे ही जानते हैं" यह उनका दावा महदंशेन सत्य है। सांडेसरा के कथन ".... उन्होंने नवम उल्लास के प्रारम्भ में- 'लोकोत्तरोऽयं संकेतः कोऽपि कोविदसत्तमाः।' नामक पंक्ति आलेखित की, जो कि गर्व से रहित और गुण से सहित है[११]।" से सभी सहमत होंगे।

तीनों **'संकेत'**-कारों के समय तक आचार्य मम्मट 'वाग्देवतावतार' रूप में कदाचित् प्रतिष्ठित नहीं हुए थे। रुय्यक-सोमेश्वर की ही तरह आचार्य माणिक्यचन्द्र भी मम्मट की आलोचना करते हुए किसी तरह की भी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करते। कहीं पर भी यदि उन्होंने मम्मट के मत को अयोग्य पाया, तो वे स्पष्ट शब्दों में अपनी असहमति प्रकट कर देतें हैं। रुय्यक और सोमेश्वर जैसे पूर्वगामी टीकाकारों से उन्होंने बहुत कुछ ग्रहण किया, लेकिन रुय्यक-सोमेश्वर के मतों का खण्डन भी उन्होंने किया है। यहाँ कुछ टीकांश पर दृष्टिपात किया जाय।

का० प्र० के प्रथम उल्लास में प्रथम मंगलकारिका की टीका में 'नवरसरुचिरां' भारती का विवरण माणिक्यचन्द्र ने विस्तार से किया है। मम्मट का समर्थन भी किया है[१२]। (पृ० ११-१२)

काव्यप्रयोजनों की चर्चा में माणिक्यचन्द्र पर संभवतः हेमचन्द्र का प्रभाव है। वे कदाचित् तीन प्रयोजन—सद्यःपरनिर्वृत्तये, कान्तासंमिततयोपदेशयुजे और व्यवहारविदे—का ही अङ्गीकार करते हैं[१३]। (पृ० १८)

मम्मट के काव्यलक्षण की व्याख्या आचार्य माणिक्यचन्द्र ने स्वरूपलक्षी की है। अनुगामी टीकाकारों के वाद-विवाद का यहाँ अभाव है। किन्तु अस्फुट अलंकरण के उदाहरण की व्याख्या में आचार्य माणिक्यचन्द्र ने अपना स्वतंत्र अभिप्राय व्यक्त किया है। रुय्यक की तरह उन्होंने यहाँ विभावना-विशेषोक्ति का संदेह-संकर नहीं माना और न ही सोमेश्वर की तरह केवल विशेषोक्ति को स्वीकार किया है। परंतु 'यः कौमार हर' इत्यादि उदाहरण में आचार्य माणिक्यचन्द्र ने भेदे-अभेदरूपा अतिशयोक्ति दिखाकर नूतन अभिगम अपनाया है[१४]। हालांकि रूपकातिशयोक्ति (भेदे-अभेदरुपा) में निगरण अनिवार्य है और इस उदाहरण में निगरण का अभाव है। परंतु आचार्य माणिक्यचन्द्र आचार्य शोभाकरमित्र की तरह सादृश्यमूलक अलंकारों को संभवतः सादृश्येतर सम्बन्ध में भी स्वीकृत करतें हैं, इसलिए उन्होंने प्रस्तुत उदाहरण में "उस चैत्र रात्रि का इस चैत्र रात्रि" के साथ अभेद सम्बन्ध की कल्पना कर के इसको रूपकातिशयोक्ति के उदाहरण के रूप में घटित किया है। तथापि जहाँ तक रसास्वाद का सवाल है, वहाँ तक तो मम्मट का उदाहरण उचित है ही, क्यों कि उसमें शुद्ध शृंगाररस है, और वह उत्तम काव्य (=ध्वनिकाव्य) का उदाहरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय उल्लास की व्याख्या में आचार्य माणिक्यचन्द्र ने शब्दशक्तियों का विश्लेषण बडे ही रोचक ढंग से किया है। परमाणु विषयक चर्चा भी उन्होंने सुचारु रूप से की है । उन पर भर्तृहरि, रुय्यक और **न्यायकुमुदचन्द्र** के कर्ता प्रभाचन्द्र का प्रभाव स्वयं-स्पष्ट है। (पृ० ७५)

लक्षणाविचार की व्याख्या माणिक्यचन्द्र ने सूक्ष्मेक्षिकापूर्वक की है[१५]।

व्यंजना व्यापार को और बद्धमूल करने के लिए आचार्य माणिक्यचन्द्र ने पूर्वपक्ष का ज़ोरदार खण्डन किया। शैत्यपावनत्व के सम्बन्ध में वे कहतें हैं कि "शैत्यादि प्रवाहधर्म है, तट तो कूडे-करकट से मलिन होता है, पवित्र नहीं" और इसके संदर्भ में उन्हों ने 'असमर्थः' पाठ की ही स्वीकृति दी है, 'समर्थः' पाठ की नहीं[१६] ॥ (द्रष्टव्य - पृ० १२७)

काकु-व्यञ्जकता की चर्चा माणिक्यचन्द्र के **संकेत** में रसावह बनी हुई है।

चतुर्थ उल्लास में ध्वनि के प्रकार निरूपण के संदर्भ में पन्थिअ...इत्यादि उदाहरण में माणिक्यचन्द्र ने आचार्य हेमचन्द्र का अनुसरण करते हुए उभयशक्ति मूल ध्वनि को नकार दिया है[१७]।

अपरांगरूप गुणीभूत में रसादि अलंकारों की चर्चा में आचार्य माणिक्यचन्द्र ने रुय्यक के अन्य ग्रन्थ **अलंकारसर्वस्व** का भरपूर उपयोग किया है। (पृ० ३९५)

असोढा..... इत्यादि उदाहरण की चर्चा **संकेत** में रसप्रद बनी हुई है।

का० प्र०-संकेत के द्वितीय और पंचम उल्लास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माणिक्यचन्द्रसूरि न्याय और मीमांसादर्शन के भी प्रगाढ़ अभ्यासी थे।

का० प्र० के चतुर्थ उल्लास का 'रसमीमांसा' का अंश है, उस पर रचा हुआ 'संकेत' का खण्ड अनेकविध दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है— "काव्यशास्त्रीय परंपरा की पूर्वप्राप्त रसपरंपरा की और **अभिनवभारती** और **काव्यप्रकाश** की पाठपरंपरा की दृष्टि से" माणिक्यचन्द्र भी रुय्यक और सोमेश्वर की तरह अभिनवगुप्त को ही दृष्टि समक्ष रख कर रसाभिव्यक्ति के संदर्भ में विविध मतों का निरूपण करते हैं। फिर भी यह चिन्तन मौलिकता के संस्पर्श से अछूता नहीं है। हेमचन्द्र की ही तरह उनके पास लोल्लट इत्यादि के मूल ग्रन्थ उपलब्ध होने की पूरी संभावना है। भट्टनायक के खण्डन से पूर्व माणिक्यचन्द्र रसपरंपरा के संदर्भ में बारह मतों का निर्देश करतें हैं, (पृ० २२२) जिनमें से कई मत **लोचन** में भी प्राप्त होते हैं। उदाहरणतः कोई विभाव को रस कहता है, कोई अनुभाव को, कोई अनुकर्त्ता को तो कोई अनुकार्य को। इतना तो निःसंकोच अनुमान किया जा सकता है, कि आचार्य माणिक्यचन्द्र के पास ऐसी कोई आधार सामग्री (= रसपरंपरा के संदर्भ में) अवश्य ही थी, जो आज कालग्रस्त हो गई है। विशेषतः "यह लुप्त प्राचीन परंपरा-जिसका स्रोत पंडितराज जगन्नाथ तक है" का निर्देश माणिक्यचन्द्र का अप्रतिम योगदान है। दुर्भाग्यवश **संकेत** की सभी आवृत्तियों में पाठपात हुआ है, या तो पाठ भ्रष्ट ही रहे हैं, अन्यथा **लोचन** और **संकेत** की सहाय से पूरी परंपरा मुखरित हो सकती थी। फिर भी अधुना यह सामग्री एक महत्त्वपूर्ण सोपान तो है ही।

रसाध्याय के संवरण में माणिक्यचन्द्र ने अभिनवगुप्त के 'अभिव्यक्तिवाद' को बार-बार अनुमोदित किया है। वे कहतें हैं, कि लोल्लटादि सर्व आचार्यों का स्थान भले ही यथास्थान रहे किन्तु — 'सर्वस्वं तु रसस्यात्र गुप्तपादा हि जानते' (पृ० २४०)। रसका सर्वस्व तो केवल अभिनवगुप्तपादाचार्य ही जानते हैं। अभिनवगुप्त का सम्मान करते हुए यह प्रशस्ति उनको अर्पण की गई है। अतः हेमचन्द्राचार्य की ही तरह वे अलंकार, रस, ध्वनि इत्यादि सिद्धांतों में ध्वनिपरंपरा का समर्थन करतें रहे हैं। **नाट्यदर्पण**कार रामचन्द्र और गुणचन्द्र उनके पुरोगामी रहे हैं, परंतु रसचर्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में उन्होंने उनके सुखदुःखवाद का उल्लेख मात्र भी नहीं किया है। शान्तरस के विभावों की चर्चा के समय 'परमेश्वर' के स्थान पर 'सर्वज्ञ' (= तीर्थंकर का विशेषण) परिभाषा का प्रयोग किया है। शान्तरस की स्वतंत्र रस के रूप में माणिक्यचन्द्र ने जो प्रस्थापना की है, वह भी **अभिनवभारती** अनुसार है (पृ० २७९)। शान्तरस के निरूपण में **चन्द्रिका**-कार के मत को माणिक्यचन्द्र ने सोमेश्वर से अधिक स्पष्ट रूप में समझाया है (पृ० २८३)।

'कस्स वा....' जैसे उदाहरण में माणिक्यचन्द्र ने कई मौलिक व्यंग्यार्थ निर्दिष्ट किये हैं।

चित्रकाव्य की चर्चा में आचार्य माणिक्यचन्द्र ने मम्मट के स्थान पर आनन्दवर्धन का ही अनुसरण किया है।

हास्यरस की चर्चा में माणिक्यचन्द्र ने सूक्ष्म मीमांसा प्रस्तुत की है।

माणिक्यचन्द्र ने 'भ्रष्टोपचार प्रतीतये' द्वारा कुमारिल भट्ट की निरूढा लक्षणा की स्पष्टता बड़े ही रोचक ढंग से की है। प्रथम उल्लास की टीका में उन्होंने जो व्यापार और विषय की चर्चा की है, काव्यशास्त्रीय परंपराओं की दृष्टि से वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

सप्तम उल्लास की टीका में उन्होंने रस के स्वशब्दवाच्यत्व का खण्डन करके आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त और मम्मट के अनुसार रस की ध्वन्यमानता का ही परिपोषण किया है (पृ० १७०)[१८]।

माणिक्यचन्द्र की यह विशेषता है कि वे कभी कभी टीका के अन्तर्गत काव्यशास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सूत्रात्मक वाक्य प्रयुक्त करते हैं। जैसे— सप्तम उल्लास में ही, रसदोष के संदर्भ में "अनुसन्धानं हि सहृदयतायाः सर्वस्वम् (पृ० १७७)। द्रष्टव्य और भी— 'आस्वादकानां हि यत्र चमत्काराविघातः तदेव रससर्वस्वम्' क्योंकि- 'आस्वादायत्तत्वात् रसस्य' (पृ० १७९)।

अष्टम उल्लास की टीका में प्रसाद गुण का स्पष्टीकरण करते हुए फिर एक बार उन्होंने आनन्दवर्धन के मत का समर्थन किया है— 'सर्गबन्धे तु रसा एव आराध्या इति' (पृ० २४१)। गुणचर्चा के दरम्यान माणिक्यचन्द्र ने प्रायः सभी पूर्वाचार्यों के गुणलक्षण उद्धृत किये हैं और उनका यथासंभव स्पष्टीकरण भी किया है[१९]। 'एतन्मन्दविपक्वतिन्दुक फलं,' इत्यादि उदाहरण (**संकेत** - २, पृ० १६) समझाते हुए उन्होंने गुजराती भाषा का पर्याय भी दिया है। तिन्दुकफलं तद्धि अस्य **टिम्बारूपमिति** ख्यातिः।

दसवें उल्लास की टीका में अर्थालंकारों की चर्चा करते हुए माणिक्यचन्द्र ने गंभीर अलंकारचिन्तन प्रस्तुत किया है। इस पर रुय्यक के **अलंकारसर्वस्व** का प्रभाव स्पष्ट है। वर्णश्लेष के उदाहरण (= अलंकारः शङ्का. इत्यादि) को समझाते हुए माणिक्यचन्द्र ने अलंकारसर्वस्वकार का मत बतलाया है। रूय्यक ने इस उदा० में 'अर्थापत्ति' माना है। क्षीणः क्षीण. इत्यादि उदा० का भी माणिक्यचन्द्र ने सूक्ष्म विवेचन किया है[२०], जिसमें भी रुय्यक के मत का निरूपण किया है। इससे विदित होता है कि माणिक्यचन्द्र को स्पष्टतया ज्ञात है, कि रुय्यक मम्मट के तरूण समकालीन थे। अतः उन्होंने रुय्यक का मत समुचित रूप से प्रदर्शित किया है। यह तथ्य रविपाणि, झलकीकर और **संकेत** के संपादक श्री वेंकटनाथाचार्य से ध्यानच्युत हो गया है। इस तरह अलंकारों की व्याख्या करते हुए माणिक्यचन्द्र **अलंकारसर्वस्व** से प्रेरित होते दिखाई पड़ते हैं। वे **अलंकारसर्वस्व** को उद्धृत भी करतें हैं। **संकेत** की पदावली में रुय्यक के शब्दों की छाया भी दिखाई पड़ती है। उनका कहना है कि **का० प्र०** का अलंकारचिन्तन गहन है, सुधियों = मतिमानों की बुद्धिरूपी शकटी भला 'संकेत' के पथप्रदर्शन बिना कैसे गमन कर सकती है[२१]। उदाहरण के रूप में माणिक्यचन्द्र का उपमा विवेचन। मम्मट का उपमालक्षण स्पष्ट करते हुए उन्होंने भोज का मत निर्दिष्ट किया है (पृ० ३३३)। शूर्पकर्णः, कुम्भोदर इत्यादि शब्द के विवेचन में हेमचन्द्र का प्रभाव स्पष्ट है। उपमा से व्यतिरेक का भेद सूक्ष्मेक्षिकापूर्वक बताया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है (पृ० ३३३)।

नाट्य में शान्तरस की स्वीकृति पहले से नहीं थी। **भरतनाट्यशास्त्र** में तो आठ रसों का ही उल्लेख था, इस परंपरा से भी माणिक्यचन्द्र पूरी तरह अवगत थे। उन्होंने अन्तिम श्लोकों में इसका निर्देश भी दिया है:-

भरतेन परित्यक्तोऽस्मीति कोपं वहन्निव।
शान्तो रसः तदधिकं भेजे श्री भरतेश्वरम्॥ (**संकेत** - २, पृ० ६१०)

काव्यप्रकाश को दो कर्ताओं (मम्मट और अलक या अल्लट) होने की प्राचीन अनुश्रुति भी माणिक्यचन्द्र को ज्ञात थी। इत्येष मार्गो०... इत्यादि का० प्र० के अन्तिम पद्य पर लिखते हुए उन्होंने इसका निर्देश किया है :-

अथ चायं ग्रन्थः अन्येनारब्धः, अपरेण च समर्थितः इति द्विखण्डोऽपि सङ्घटनावशात् अखण्डायते। सुघटं हि अलक्ष्यसन्धि स्यात् इत्यर्थः (**संकेत** - २, पृ० ६०९)।

पूरे **संकेत** का हम सिंहावलोकन करें तो उनकी निम्नोक्त विशेषताएँ दृष्टिगत होती हैं।

(१) आवश्यक स्थलों पर टीका, अनावश्यक स्थलों का संक्षेप।

(२) पूर्वसूरियों के मत का यथायोग्य निरूपण और स्वाभिप्राय।

(३) मूलग्रन्थ को विशद करने के लिए कई स्वरचित उदाहरण, जो उनको 'सहृदय कवि' भी सिद्ध करते हैं।

(४) जैन मुनि होते हुए भी ब्राह्मण परंपरा के ग्रन्थों का गंभीर अध्ययन, जैसे शैवशास्त्र, न्याय-वैशेषिकशास्त्र (**संकेत** - १, पृ० ९,१३०)।

(५) जैनेतर काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का निष्पक्ष अध्ययन और आनन्दवर्धन तथा अभिनवगुप्त की परंपरा की ओर झुकाव।

(६) डा० सांडेसरा के शब्दों में असामान्य बुद्धिवैभव, व्युत्पन्न पांडित्य और मार्मिक रसज्ञता से अंकित।

(७) पद-पद पर 'रसध्वनि-व्यञ्जनासिद्धांत' का अनुमोदन।

(८) विवेचन की प्रणाली प्राचीन भारतीय ही रही है, अन्य आचार्य व टीका ग्रन्थांश का खण्डन भी पुनर्मंडन हेतु ही किया गया है। उसमें कहीं भी आक्रोश नहीं अपितु, सौम्य सूर ही है।

(९) मीमांसा-न्याय-व्यञ्जनास्थापन इत्यादि दुर्बोध विषयों का सरलीकरण।

(१०) स्वयं माणिक्यचन्द्र के शब्दों में -

गुणानपेक्षिणी यस्मिन् अर्थालङ्कारतत्परा।

प्रौढाऽपि जायते बुद्धिः **संकेतः** सोऽयमद्भुतः॥

इस तरह माणिक्यचन्द्र ने हेमचन्द्र की तरह ही काव्यशास्त्र में योगदान करके भले ही वह टीका ग्रन्थ के रूप में हो, गूर्जरधरा को गौरव बक्षा है। उनका सारस्वत्व, मुनि की निर्ममता, मौलिकता, सहृदयता, टीका संरचन में अद्भुत सौष्ठव, आलोचक की चकोर दृष्टि — सभी गुण उनके संकेत के लिए भूषण समान हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भसूची :-

१. **संकेत**, भट्ट सोमेश्वर, सं० र० छो० परीख, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९५९, पृ० १०; और **संकेत**, माणिक्यचन्द्र, सं० अभ्यंकर वासुदेव शास्त्री, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली - ८९, पूणे १९२१, पृ० २. परंतु मधुसूदन ठांकी ने अपने आलेख "कवि रामचन्द्र अने कवि सागरचन्द्र" (गुजराती), (**संबोधि**, अप्रैल १९८२ - जनवरी १९८३, वॉल्युम-२, पृ० ६८-७६) में युक्तियाँ दे कर आचार्य माणिक्यचन्द्र का समय ई० ११९० से १२१० तक निर्धारित किया है।

२. त्रिपुटी मुनि महाराज, **जैन परंपरानो इतिहास**, चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला, अहमदाबाद १९५२, पृ० ३७; और डा० भोगीलाल सांडेसरा, **महामात्य वस्तुपालनुं साहित्य मंडल तथा संस्कृत साहित्यमां तेनो फाळो**, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद १९५७, पृ० १५५; तथा मोहनलाल दलीचन्द देसाई, **जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास**, जैन श्वेताम्बर कॉन्फरन्स ऑफिस, मुंबई १९३३, पृ० ३३७, कंडिका-४८७.

३. डा० भोगीलाल सांडेसरा, **वस्तुपाल का विद्यामंडल**, जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, पत्रिका नं० १६, बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी, वाराणसी (प्रकाशन वर्ष अमुद्रित), पृ० २३.

४. डा० सांडेसरा, **महामात्य वस्तुपालनुं०**, पृ० ११३, ११५.

५. **पुरातन प्रबन्ध संग्रह**, सं० मुनि जिनविजयजी, सिंधी जैन ग्रन्थमाला ग्रन्थांक - २, कलकत्ता १९३६, पृ० ७६.

६. संकेत, सोमेश्वर भट्ट, भाग १-२.

७. रसवक्त्रग्रहाधीशवत्सरे मासि माधवे।
काव्ये काव्यप्रकाशस्य सङ्केतोऽयं समर्थितः ॥ (**का० प्र० संकेत-२**, पृ० ६१२)

८. सर्वालङ्कृतिफालभूषणमणौ काव्यप्रकाशे मया।
वैधेयेन विधीयते कथमहो ! सङ्केतकृत साहसम् ॥ (**का० प्र० संकेत-१**, पृ० ६)

९. स्वस्यानुस्मृतये जडोपकृतये चेतोविनोदाय च ॥ (संकेत-**१**, पृ० १, पृ० ६)

१०. भावुकप्रिया - "ज्ञानार्थं विधेयतया भिक्षामटतेत्यर्थः"। (संकेत-१, पृ० ३९)

११. डा० सांडेसरा, वस्तुपाल का०, पृ० २३.

१२. यदि संख्येयैव हीनत्वं अभिप्रेतं स्यात्, तदा ग्रन्थकृत् "षड्रसा न च हृद्यैव तैः" इति व्याख्यां न कुर्यात्। (**का० प्र० संकेत-१**, पृ० ११-१२)

१३. **का० प्र० संकेत**-१, पृ० १८-२४.

१४. सूक्ष्मेक्षिकया तु 'ता एव, ते च' इत्यादौ भेदे अभेद इति रूपकातिशयोक्तिः स्फुटैवेति उदाहरणान्तरमेवान्वेष्यम्। तथा अत्र अलङ्कारान्तरं व्याख्यानान्तरं चास्तीति स्वयमूहनीयम् ॥ (**का० प्र० संकेत-११**, सं० मुनि जिनविजयजी, पृ० ३९)

१५. का० प्र० २/१२-१३ पर संकेत - पृ० ५३-११५.

१६. यथा तटस्य प्रयोजने प्रतिपाद्ये असमार्थ्यं न तथा गङ्गाशब्दस्य। तस्मात् अभिधालक्षणाभ्यामन्यः तच्छक्तिद्वयोपजनिता-
र्थावगमपवित्रितप्रतिपत्तृप्रतिभासहायार्थद्योतनशक्तिः ध्वननात्मा व्यापारः ॥ (**संकेत-१**, पृ० १२७)

१७. वाच्यबाधेन च व्यङ्गस्य स्थितत्वात्, तयोः मिथः असङ्गत्या नोपमानोपमेयभावः इति नालङ्कारो व्यङ्ग्यः, किन्तु वस्त्वेव ॥ (**संकेत-१**, पृ० ३०८)

१८. न च केवल शृङ्गारादिशब्दान्विते विभावादिप्रतिपादनरहिते काव्ये मनागपि रसवत्वप्रतीतिः यथा- 'शृङ्गारहास्यकरुणाः' इत्यादौ। तस्मात् अन्वयव्यतिरेकाभ्यां अभिधेयसामर्थ्याक्षिप्तत्वमेव रसादेः, न तु अभिधेयत्वं कथञ्चित् इति स्वशब्दवाच्यता दोषः इत्यर्थः। एवं द्वितीय एव पक्षो न्याय्यः। एतेन- 'रसवद्दर्शितस्पष्टैत्यादिव्याख्यायां' तत्र 'स्वशब्दाः शृङ्गाराद्याः शृङ्गारादेर्वाचकाः' इति उद्भटोक्तं निरस्तम् ॥ (**का० प्र० संकेत-२**, पृ० १७०)

१९. अलङ्कारः शङ्का० इत्यादि उदाहरण पर संकेत- अलङ्कारसर्वस्वमते तु - अत्र अर्थापत्तिरलङ्कारः। (**संकेत-२**, पृ० २९९)

२०. अलङ्कारसर्वस्वेऽपि इत्थमेवोक्तम्। (**संकेत-२**, पृ० ४२८)

२१. पारेऽलङ्कारगहनं सङ्केताध्वानमन्तरा।
सुधियां बुद्धिशकटी कथङ्कारं प्रयास्यति ॥ (**संकेत**-२, पृ० ३३३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भग्रंथ :-

१. डा० भो० ज० सांडेसरा, **महामात्य वस्तुपालनुं साहित्यमंडल,** गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद १९५७.

२. डा० भो० ज० सांडेसरा, **वस्तुपाल का विद्यामंडल,** श्री जैन संस्कृति संशोधन मण्डल, पत्रिका नं० १६, बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी, वाराणसी (प्रकाशन वर्ष अमुद्रित).

३. **भट्ट सोमेश्वरकृत संकेत** भाग-१-२ संपा० श्री र० छो० परीख, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर १९५९.

४. **माणिक्यचन्द्रकृत संकेत,** सं० अभ्यंकर वासुदेव शास्त्री, आनन्दाश्रम संस्कृत गन्थावलि-८९, पूणे १९२९.

५. त्रिपुटी मुनि महाराज, **जैन परंपरानो इतिहास,** चारित्र स्मारक ग्रंथमाला, अहमदाबाद १९६०.

६. **संकेत १-२,** माणिक्यचन्द्रकृत (का० प्र० सह) संपा० श्री वेंकटनाथाचार्य, प्राच्यविद्यासंशोधनालय, मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर १९७४, १९७७.

७. पारुल मांकड, **काव्यप्रकाश (१-६)ना त्रण संकेतोनुं विवेचनात्मक अने तुलनात्मक अध्ययन,** (यु० जी० सी० रीसर्च एसोसीयेटशीप की योजनान्तर्गत किया गया अप्रकाशित शोधप्रबन्ध), गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद १९९०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. काकोनी की जैन प्रतिमा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. काकोनी की जैन प्रतिमा का लेख

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काकोनी का जैन प्रतिमा लेख, संवत् १०८२

अरविन्द कुमार सिंह

राजस्थान का उपरमाल क्षेत्र (प्रायः प्राचीन पश्चिमी पारियात्र प्रदेश) ब्राह्मणीय मन्दिरों के साथ-साथ जैन कलाकृतियों के लिये विख्यात है। इस क्षेत्र के कोटा जिले में स्थित अल्प ज्ञात ग्राम काकोनी के पुराने मन्दिरों के खण्डहरों में से जैन कला के भी कुछ अवशेष उजागर हुए हैं। उनमें उल्लेखनीय है एक खण्डित मन्दिर के द्वार के सामने रखी सलेख जैन प्रतिमा (चित्र क्रमांक १)। प्रतिमा के मसूरक (गद्दी) पर कुछ हद तक भ्रष्ट संस्कृत भाषा तथा नागरी लिपि में ३ पंक्तियों में लेख अंकित है (चित्र क्रमांक २)। प्रस्तुत अभिलेख में देशी संघ के करणिक भट्टारक शशधर तथा भट्टारक जयकीर्त्ति का नाम अंकित है। दोनों को भट्टारक कहा जाना इस तथ्य का प्रकाशक है कि वे मठवासी परम्परा के मुनि रहे होंगे। यह संभव है कि ये दोनों भट्टारक उत्तर की (अपने को यापनीय नहीं कहलाने वाली) अचेल-क्षपणक परम्परा से सम्बन्धित रहे हों, अथवा दिगम्बर परम्परा से। प्रस्तुत स्थान के गोष्ठियों का भी उल्लेख है यद्यपि उनके नाम नहीं दिये हैं। उत्तर के अश्वेताम्बर परम्परा के ऐसे लेखों में नियमित आनेवाला अन्तिम शब्द "प्रणमति" यहाँ भी उपस्थित है।

अभिलेख का पाठ

१. संवत् १०८२ श्रीदेसि(शी) संघस्य तस्य भ[ट्ट] शशधर करनि(णि)क

२. रसनिभगुणरासि (शि)। स(श)मदमसद्वृत्तसत(?) पाः भट्टारक

३. श्री जयकीर्त्तिः समस्तगोष्ठि प्रणमतिः।

चित्र सूची :-

१. काकोनी की जैन प्रतिमा (Courtesy, American Institute of Indian Studies, Varanasi.)

२. काकोनी की जैन प्रतिमा का लेख (Courtesy, American Institute of Indian Studies, Varanasi.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org